

साउथपॉइंट विद्याश्रम में समावेशी शिक्षा

नीता कुमार

"भारतीय बच्चों के लिए एक उत्कृष्ट भारतीय शिक्षा कैसी हो?" इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए 1990 में वाराणसी. उ. प्र. में हमारी सोसाइटी निर्माण के द्वारा द साउथपॉइंट विद्याश्रम खोला गया। उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में दो बातें थीं। पहली, शिक्षा *समावेशी* होनी चाहिए। इसमें हर पृष्ठभूमि के बच्चों को शामिल करना चाहिए, भले ही वे किसी भी वर्ग, धार्मिक व क्षेत्रीय समुदाय, लिंग और क्षमता वाले क्यों न हों। यह बात तो साफ है कि भारतीय स्कूल समावेशी *नहीं* होते। विद्यार्थियों को हमेशा उनके वर्ग और कभी–कभी कुछ अन्य मापदण्डों के आधार पर भी विभेदित किया जाता था। दूसरी, शिक्षा *उत्कृष्ट* होनी चाहिए। बच्चों को ऐसे कौशल सिखाने चाहिए जिससे वे अपने सपनों को पूरा कर सकें और आजीवन सीखने को तत्पर रहें। हमने इन दृष्टिकोणों को "उत्तर उपनिवेशी" का नाम दिया और अपने उत्तर उपनिवेशी शिक्षा केन्द्र में शोध करके उन्हें लगातार विकसित किया।

"उत्तर उपनिवेशी" नाम का मतलब क्या है? हम *आज* की भारतीय शिक्षा की समस्याओं को "उपनिवेशी" कहते हैं अर्थात (1) आज के शिक्षकों में एक सोपानिक विचारधारा है जिसमें कुछ बच्चों को स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिगम के अयोग्य माना जाता है, और (2) इस बात के लिए संसाधनों और अवधारणाओं की कमी है कि बच्चों को प्रगतिशील, बाल–केन्द्रित और समावेशी तरीके से कैसे पढ़ाया जाए। इन समाधानों को "उत्तर उपनिवेशी" कहने के पीछे हमारा तात्पर्य यह है कि (1)हमारे स्कूल में समानता की राजनीति को साकार किया जाना चाहिए, जहाँ परिवार और समुदाय की पृष्ठभूमि, मूल्यों और तौर–तरीकों, रिवाजों और आदतों की परवाह न करते हुए हर किसी को एक शिक्षार्थी माना जाए और (2)हमें पाठ्यक्रम, शिक्षक शिक्षा और कला सहित अपने कार्य–व्यवहारों की मदद से संसाधनों का निर्माण करना चाहिए। हमारा निष्कर्ष यह रहा कि ये दोनों समाधान करणीय हैं और ये स्कूल और परिवार के मजबूत रिश्ते पर निर्भर होते हैं।

मैं इस लेख में 1990 से अब तक की यात्रा के बारे में बताना चाहती हूँ। आशा है कि हम इस विचार को आगे बढ़ा पाएँगे ताकि इस तरह के समाधानों से दूसरों की सहायता कर सकें।

समानता की राजनीति

बच्चे की अवधारणा

भारत में हम विभिन्न स्रोतों से बच्चे की अवधारणा का पुनर्निर्माण कर सकते हैं जैसे पौराणिक कथाएँ, अवलोकन, साक्षात्कार, कहानी और ऐतिहासिक शोध। हमें एक दिलचस्प बात यह पता चलती है कि *दोहरी* अवधारणा के अनुसार बच्चे के दो रूप हैं। पहला, बच्चा लचीला होता है। शिक्षा एक शक्तिशाली प्रक्रिया है और जो बच्चा इस प्रक्रिया से गुजरता है वह न केवल बौद्धिक रूप से बल्कि सामाजिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और विमर्शात्मक रूप से भी बदल सकता है। किसी के जीवन को बदलने के लिए शिक्षा की शक्ति को अतिरंजित नहीं किया जा सकता। दूसरी अवधारणा यह है कि कुछ बच्चों को कभी नहीं बदला जा सकता। कुछ लोगों के भीतर एक ऐसा मूल भाव होता है जिसके कारण वे बदलाव का बहुत प्रतिरोध करते हैं।

हम इस दोहरी अवधारणा को स्वीकार करते हैं। जो बच्चे शिक्षा के प्रतिरोधी माने जाते हैं वे उन वर्गों और समुदाय के होते हैं जिन पर पहले से ही "पिछड़े होने" का ठप्पा लगा होता है। लेकिन विडम्बना यह है कि मध्यम वर्ग और आधुनिक परिवार में भी ऐसे कई बच्चे हैं। इसका मतलब यह हुआ कि किसी भी बच्चे में ऐसा दुराग्रह देखा जा सकता है – यह उसका व्यक्तिगत स्वभाव है।

हम अपने स्कूल में जो समाधान अपनाते हैं और जिसे हम दूसरों के सामने भी रखना चाहते हैं वह यह है कि दूसरी अवधारणा की उपेक्षा करें और पहली का विस्तार करने की दिशा में काम करें। जब शिक्षकों को यह बताया जाता है कि वे अपनी कक्षा में मौजूद विभिन्न प्रकार के बच्चों के साथ कैसे काम करें, किन तरीकों और विचारों को अपनाएँ (यानी जब विविधता को खास तौर पर सम्बोधित किया जाता है) तो वे पहली अवधारणा के अन्तर्गत काम करते हैं। वे इस बात को पहचानते हैं कि हमारी अवधारणाएँ हमारी अपनी संस्कृति

में होती हैं और फिर वे कल्पनाशीलता के साथ ऐसे शिक्षण की रचना करते हैं जो उनके लक्ष्य समूह में मौजूद हर बच्चे को शामिल कर सके।

आधुनिकता की अवधारणा

कई विद्वानों, शिक्षकों और सामान्य लोगों ने "भारतीय संस्कृति" को एक स्थिर अवधारणा माना, लेकिन इससे काफी कठिनाइयाँ पैदा हो सकती हैं क्योंकि तब हम समस्याओं के समाधान के बारे में सोच नहीं पाएँगे क्योंकि हमें लगेगा कि "संस्कृति" से निपटना बहुत बड़ी बात है। हमारा दृष्टिकोण यह है कि संस्कृति जटिल और बहुस्तरीय है, गतिशील और तरल है—या जैसा कि मैं समझती हूँ, इसमें कई अवधारणाएँ होती हैं। इसमें आधुनिकता के कुछ पहलुओं के बारे में अवधारणाएँ हैं, विशेष रूप से व्यक्तिवाद और पसन्द के बारे में, जो बच्चों के विकास में या तो बाधा डाल सकती हैं या उन्हें सशक्त कर सकती हैं। हम चाहें तो चयनित अवधारणाओं को उजागर करके अन्य को दरकिनार कर सकते हैं और जो संस्कृति के भीतर हैं वे सहज महसूस करेंगे एवं सहयोग देंगे।

संक्षेप में, यहाँ उद्देश्य यह है कि कक्षा को ठेठ अनुशासनात्मक नहीं होना चाहिए जहाँ एकमात्र अधिकार और सत्ता शिक्षक की हो। इस बात को मान्यता दी जानी चाहिए कि हर बच्चे की अपनी एक अलग पहचान है। शिक्षक व बच्चों की उम्र और विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि व पारिवारिक अन्तर के बावजूद हर बच्चे को गरिमा व सम्मान दिया जाना चाहिए। इसे कक्षा की स्थानिक स्थिति, रोज के कामकाज के लिए बनाई गई प्रक्रियाओं व नियमों, अन्य बड़े कार्यों और भाषा के प्रयोग में व्यावहारिक रूप से व्यक्त किया जा सकता है। पाठ्यक्रम में इसे और अधिक सूक्ष्म रूप से व्यक्त किया जा सकता है, जिसमें प्रत्येक विषय ऐसे दृष्टिकोण से सिखाया जा सकता है जो बच्चों की रुचियों, अपने और अपने संसार के बारे में उनके विकासशील दृष्टिकोण, उनकी ऊर्जा और कल्पना शक्ति और अपने वर्तमान परिवेश से कहीं आगे बढ़ने की उनकी क्षमता का सम्मान करे। ऐसी योजनाएँ बनाई जा सकती हैं जहाँ बच्चों की आयु के हिसाब से कक्षा की सारी कार्य पद्धति लोकतन्त्र और समावेशीकरण के मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित हों।

एक शिक्षार्थी के रूप में वयस्क

अपने आप को एक नई तरह से संकल्पित करने में शिक्षकों की मदद करनी होगी जिससे वे स्कूल की विचारधारा में इन गहन परिवर्तनों को ला सकें, उदाहरण के लिए—बच्चे के साथ ऐसा व्यवहार करना जैसे वह सदा सीखने के लिए सक्षम है, अपनी गति से सीखने में लगा हुआ है और दूसरों के बराबर है। वे भी उसी बहुस्तरीय बहुल अवधारणाओं का हिस्सा हैं जो भारतीय समाज और संस्कृति का गठन करती हैं। उदाहरण के लिए उनके अपने घरों में अनेक नियम होते हैं। लेकिन हो सकता है कि वहाँ समय के बारे में या व्यक्तियों के अधिकारों के बारे में कुछ बुनियादी नियमों की कमी हो जो स्कूल में बहुत आवश्यक हैं। शिक्षकों के स्कूली कार्यों पर उनके घर की संस्कृति का प्रभाव होता है, इसके बारे में चिन्तित होने की बजाय उसके साथ में काम करना चाहिए।

शिक्षकों के साथ काम करने के लिए हमने उन्हें सक्षम बनाने वाली तीन कार्यनीतियाँ विकसित की हैं ताकि वे उन दायरों से बाहर निकल सकें जिनमें वे यन्त्रवत बार—बार उन्हीं बातों को प्रस्तुत करते रहते हैं जिन्हें उन्होंने अपने कम गुणवत्ता वाले स्कूलों और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध परिवारों में अनुभव किया।

(i) **बौद्धिक दृष्टिकोण** शिक्षकों को बुद्धिजीवी माना जाता है जो शिक्षित हैं, नए विचारों को पसन्द करते हैं और विश्लेषण कर सकते हैं। उन्हें चुनिन्दा व्याख्यानों और प्रासंगिक विषयों की चर्चा के माध्यम से सिखाया जाता है जैसे भारत में उपनिवेशवाद का प्रभाव, जाति, मीडिया, लिंग भूमिका आदि। शिक्षण विधि को बहुत ध्यानपूर्वक तैयार किया जाता है जिससे वह अन्तःक्रियात्मक हो और शिक्षण का ऐसा बेहतरीन नमूना हो कि जिसे अपने कार्याभ्यासों के साथ अपनाने में शिक्षक सहजता महसूस करें।

(ii) **तकनीकी दृष्टिकोण** शिक्षकों को चुस्त और चतुर पेशेवर कर्मी माना जाता है जिन्हें काम करने के लिए एक ऐसा स्थान और वातावरण दिया जाना चाहिए जहाँ वे अपेक्षित कामों को कर सकें— पेशेवर तौर पर अपने कर्तव्यों को पूरा करें और सक्रिय बच्चों के समूह के साथ कल्पनाशीलता के साथ काम करें। हम उन्हें बाल—केंद्रित कक्षा और एक सुचारु कार्यक्रम के लिए अधिकतम सहायता देने के साथ—साथ वे तरीके भी सुझाते हैं जिनके द्वारा कार्य के दर्शन को व्यावहारिक रूप दिया जा सके। इस डिजाइन में किताबों की अलमारियाँ, सामान रखने की जगह, सॉफ्ट बोर्ड, फर्श और बच्चों के बैठने की अनुकूल व्यवस्था, शिक्षण के संसाधन, प्रकाश और हवा शामिल है।

(iii) **अभिनय का दृष्टिकोण** शिक्षकों के लिए थिएटर सम्बन्धी खेल खेलना, अभ्यास करना और अभिनय की

प्राथमिक कलाओं में महारत हासिल करना जरूरी है। दार्शनिक रूप से देखा जाए तो इससे एक ऐसी क्षमता विकसित होती है जिससे अपने आप को, अपने व्यवहार को और अपने सामर्थ्य को पुनः संकल्पित किया जा सकता है। व्यावहारिक रूप से देखें तो इससे स्थल के साथ और अन्य लोगों जैसे सहकर्मियों व विद्यार्थियों के साथ कल्पनापूर्ण ढंग से काम करने तथा कार्यों को रचनात्मक रूप से करने के द्वार खुल जाते हैं। *बार–बार एक जैसा काम करते रहने के जाल से मुक्त होने और विलक्षण पुनर्रचना के किए थिएटर एक शक्तिशाली स्रोत है।*

समावेशीकरण की तकनीक

पाठ्यक्रम

अब हम भारतीय शिक्षा में परिवर्तन की दोहरी जरूरत के दूसरे भाग पर आते हैं, पहली थी समानता की राजनीति और दूसरी है समानता के लिए तकनीक। पाठ्यक्रम पर चर्चा और हमारा अपना अनुभव हमें बताता है कि एक ही विषय–वस्तु के कई सम्भावित दृष्टिकोण हैं, जिनमें से कुछ ऐसे हैं जो दूसरे बच्चों की तुलना में विशेष पृष्ठभूमि वाले बच्चों को हाशिए पर रख देते हैं। इससे भी बड़ी भारतीय समस्या यह है कि हमारे अधिकांश स्कूलों में शिक्षण इतना अरुचिकर है कि जो बच्चे बुद्धिमान हैं और सीखना चाहते हैं, वे भी स्कूल के काम नहीं करना चाहते और कमजोर विद्यार्थी बन जाते हैं या स्कूल ही छोड़ देते हैं। हमारे स्कूल में द्वि–शाखीय नीति है–पहली, शिक्षण को समृद्ध, पर्याप्त और रोमांचक बनाना ताकि बच्चे सीखने की ओर आकर्षित हों और अपना काम खुद पूरा कर सकें तथा स्वतन्त्र शिक्षार्थी बन सकें। अच्छी शिक्षा में बहिष्करण के चक्र को तोड़ने के लिए यह बात महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे अपने गृहकार्य के लिए घर के बड़ों की सहायता पर निर्भर न रहें। दूसरा, हमारी नीति महत्त्वाकांक्षी है, जिसके तहत हम खुद पाठ और कार्यपुस्तिकाएँ तैयार करते हैं जिनमें सामुदायिक, स्थानीय और राष्ट्रीय आख्यानों का प्रयोग कल्पनाशीलता और विलक्षणता के साथ किया जाता है। कीरन एगन के विचारानुसार हम भी बच्चे की क्षमता पर विश्वास करते हैं कि वह एक कलाकार, कवि और दार्शनिक के रूप में इस विषय–वस्तु को समझ पाएगा जिससे वह परिचित तो है ही लेकिन जो बच्चे की कल्पनाओं के अनुसार अनोखी भी है।

अप्रत्यक्ष पाठ्यक्रम

यह आसान–सा सवाल पूछना कि," इससे बच्चा क्या सीखेगा?" यानी इस बारीकी पर ध्यान देना कि न पढ़ाना भी कभी–कभी पढ़ाना होता है। उदाहरण के लिए जब हम किसी हिन्दू त्योहार के बारे में बच्चों को सिखाते हैं कि यह क्या है, तो इससे बच्चों को पता चलता है कि इस त्योहार का बड़ों के लिए क्या महत्त्व है। अगर कोई मुस्लिम त्योहार है और हम बच्चों को उसके बारे में न सिखाएँ तो इससे बच्चों को पता चलता है कि उसके बड़ों के लिए इस त्योहार का महत्त्व नहीं है। दीवार पर लगे हुए चित्र, दीवार की प्रकृति, स्कूल के अन्दर और बाहर होने वाला हर कार्य और हर घटना बच्चों को यह सिखाती है कि उन्हें अपने, अपने से बड़ों और अपनी व बड़ों की दुनिया के बारे में कैसे सोचना चाहिए जिनके बारे में वे सीख रहे हैं।

निष्कर्ष

कार्य करना ही सबूत होता है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि नीतियों को पढ़कर दावे नहीं किए जा सकते। पाठ्यक्रम का मतलब यह नहीं है कि हमने *योजना* बना ली है, असली बात तो उसका क्रियान्वयन है, हमारे इरादे क्या हैं, ये महत्त्वपूर्ण नहीं बल्कि उनका अनुभव करना महत्त्वपूर्ण है। शिक्षकों को उनके प्रशिक्षण के सालों या डिग्रियों के आधार पर नहीं बल्कि कक्षा में अवलोकन के आधार पर आँकना चाहिए। अतः ऊपर जो कुछ बताया गया है, वह साउथपॉइंट विद्याश्रम में रोज होने वाली एक विस्तृत योजना का छोटा–सा परिचय है। साउथपॉइंट विद्याश्रम बड़े गर्व के साथ सबको आमंत्रित करता है कि वे यहाँ आएँ, कार्य स्थल पर अवलोकन करें और यहाँ के दर्शन और अभ्यासों से सीखें।

नीता कुमार क्लेरमोंट मैकेना कॉलेज, क्लेरमोंट, कैलिफोर्निया में दक्षिण एशियाई इतिहास की ब्राउन फैमिली प्रोफेसर हैं। कारीगरों, शहरीकरण और सामाजिक परिवर्तन पर उनके लेख प्रकाशित चुके हैं। पिछले 25 वर्षों से वे अनेक परिप्रेक्ष्यों से भारतीय शिक्षा का अध्ययन कर रही हैं। उनकी पुस्तकों और लेखों में Artisans of Banaras (Princeton, 1998), Friends, Brothers and Informants (Berkeley, 1992), Women as Subjects (Virginia, 1994), Mai: A translation (Kali, 2001), Lessons from Schools (Sage, 2001), The Politics of Gender, Community and Modernities (Oxford, 2007); आदि शामिल हैं और वे 'Managing a School in India' और 'Education and the Rise of a New Indian Intelligentsia' नामक दो पुस्तकों पर काम कर रही हैं। 1990 से वे वाराणसी, भारत में नवाचारी शिक्षा के क्षेत्र में सेवाकार्य और उसके अनुसमर्थन से जुड़ी हुई हैं। इसके लिए वे पाठ्यक्रम, बच्चों के लिए कहानियों, कला की सामग्री और शिक्षक प्रशिक्षण एककों को विकसित करने के लिए बच्चों, शिक्षकों और परिवारों के साथ काम कर रही हैं (www.nirman.info)। उनसे nita.kumar@claremontmckenna.edu पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : नलिनी रावल